Shodhaamrit, Vol.-2; Issue-1 (Jan.-June) 2025 : Page No.-204-208

शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अर्धवार्षिक, सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-2.0
Vol.-2; issue-1 (Jan.-June) 2025
Page No- 204-208
DOI : 10.71037/Shodhaamrit.v2i1.25
©2025 Shodhaamrit
www.shodhaamrit.gyanvividha.com

Monika parihar
PhD Scholar, Department of Hindi, Saurashtra university rajkot (Gujrat).

Corresponding Author :
Monika parihar
PhD Scholar, Department of Hindi, Saurashtra university rajkot (Gujrat).

उत्तर-आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-अनुभव और देह-चेतना

सारांश : उत्तर-आधुनिक हिन्दी उपन्यासों ने स्त्री को केवल करुणा, पवित्रता और त्याग की पारंपरिक प्रतिमा के रूप में नहीं देखा; उन्होंने उसे अनुभव करती हुई, बोलती हुई, इच्छुक, आहत, श्रमशील, प्रतिरोधी और आत्मनिर्माण-शील सत्ता के रूप में सामने रखा। इस शोध-पत्र का उद्देश्य यह दिखाना है कि उत्तर-आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-अनुभव का केन्द्र केवल सामाजिक उत्पीड़न नहीं, बल्कि देह की स्मृति, देह की भाषा, देह पर नियंत्रण की राजनीति, और देह से जन्म लेती आत्म-चेतना भी है।

इस अध्ययन में मित्रो मरजानी, चित्तकोबरा, छिन्नमस्ता, चाक, कठगुलाब और माई को मुख्य आधार बनाया गया है। निकट-पाठ, स्त्रीवादी आलोचना और उत्तर-आधुनिक विमर्श की सहायता से यह निष्कर्ष सामने आता है कि इन उपन्यासों में स्त्री-देह केवल भोग या लज्जा की वस्तु नहीं रहती; वह अनुभव का अभिलेख, प्रतिरोध का क्षेत्र, और आत्म-अधिकार की उद्घोषणा बन जाती है। यहाँ देह-चेतना काम-वर्णन का पर्याय नहीं, बल्कि मनुष्य होने के अधिकार की पुनर्स्थापना है।

मुख्य शब्द : उत्तर-आधुनिकता, हिन्दी उपन्यास, स्त्री-अनुभव, देह-चेतना, स्त्री-विमर्श, अस्मिता, प्रतिरोध, यौनिकता, पितृसत्ता, आत्म-अधिकार।

परिचय : हिन्दी उपन्यास की उत्तर-आधुनिक पृष्ठभूमि में जीवन को किसी एकरेखीय सत्य, एक ही नैतिकता या एक ही अनुभव-सूत्र से नहीं पढ़ा जा सकता। यही कारण है कि इस दौर की स्त्री-केंद्रित रचनाएँ घर और बाहर, प्रेम और हिंसा, मातृत्व और अकेलेपन, देह और आत्मा, भाषा और मौन—इन सबके बीच की सीमाओं को नया अर्थ देती हैं। उत्तर-आधुनिकता का महत्त्व इस बात में भी है कि वह महावृत्तान्तों की जगह छूटे हुए, दबे हुए और हाशिए के अनुभवों को पाठ के केंद्र में लाती है; इसलिए स्त्री-अनुभव यहाँ 'विषय' भर नहीं, बल्कि ज्ञान की एक वैकल्पिक पद्धति बन जाता है। इसीलिए उत्तर-आधुनिक हिन्दी स्त्री-लेखन में अनुभव की बहुलता, पहचान की अस्थिरता, और सामाजिक-सांस्कृतिक वर्चस्व के ख़िलाफ़ भाषिक प्रत्याक्रमण विशेष रूप से

दिखाई देता है। (पचौरी, 1996; अग्रवाल, 2011)

इसी पृष्ठभूमि में कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा और गीतांजलि श्री की रचनाएँ हिन्दी कथा-साहित्य में एक निर्णायक मोड़ का निर्माण करती हैं। इन लेखिकाओं ने स्त्री को केवल पीड़िता नहीं रहने दिया; उन्होंने उसे अपनी इच्छाओं, विफलताओं, कुंठाओं, आक्रोशों और चुनावों के साथ रचा। यहाँ स्त्री की देह मंदिर, घर, चौखट, बिस्तर, प्रसव, श्रम, यातना, यात्रा और स्मृति—सब जगह उपस्थित है। कभी वह बोलचाल की अशिष्टता में स्वतंत्रता तलाशती है, कभी प्रेम के मध्य अपनी पहचान, कभी घरेलू संरचना में अदृश्य श्रम, कभी हिंसा के विरुद्ध खड़े होने की शक्ति। इस प्रकार उत्तर-आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-अनुभव एक समूची सभ्यता की आत्म-आलोचना का रूप ले लेता है। (राजकिशोर, 1994; पाण्डे, 2019)

सैद्धान्तिक ढाँचा और शोध-विधि : इस अध्ययन का सैद्धान्तिक आधार स्त्रीवादी पाठालोचना, उत्तर-आधुनिक विमर्श और देह-राजनीति की अवधारणा पर टिका है। प्रभा खेतान का यह कथन कि स्त्री का संसार "मनोजगत से व्यवहार-जगत तक" फैले हुए एक उपनिवेश के भीतर संचालित होता है, इस शोध के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है; उतना ही महत्त्वपूर्ण उनका दूसरा कथन भी है कि स्त्री "उपनिवेश के बीच में खड़ी है।" इन दोनों सूत्रों से स्पष्ट होता है कि स्त्री का संघर्ष बाहर के शत्रु से ही नहीं, अपने भीतर रोपी गई दासता, अपराधबोध, संस्कार और स्वीकृतियों से भी है। इसलिए देह-चेतना को यहाँ जैविक या काम-केन्द्रित सन्दर्भ तक सीमित नहीं रखा गया; इसे सत्ता, भाषा, श्रम, यौनिकता, मातृत्व, हिंसा और आत्म-अधिकार से जुड़े त्रासद तथा मुक्ति-पक्षीय अनुभव के रूप में पढ़ा गया है। (खेतान, 2003; पाण्डे, 2019)

शोध-विधि के स्तर पर यह अध्ययन गुणात्मक तथा विश्लेषणात्मक है। इसमें चयनित उपन्यासों का सूक्ष्मपाठ किया गया है; साथ ही हिन्दी में उपलब्ध आलोचनात्मक पुस्तकों, शोधप्रबंधों और शोधलेखों की सहायता से उनकी अवधारणात्मक पृष्ठभूमि निर्मित की गई है। ऋषि भूषण चौबे, इंद्रवती और संतोष हेमराज पवार जैसे शोधकर्ताओं के कार्य यह संकेत देते हैं कि उत्तर-शती के हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-विमर्श केवल मुक्ति-नारा नहीं, बल्कि परिवेश, वर्ग, भाषा और सांस्कृतिक संरचनाओं से गुँथा हुआ विमर्श है। इसी के आधार पर इस शोध में तीन विश्लेषणात्मक संकेतकों का उपयोग किया गया है—पहला, स्त्री-अनुभव की भाषिक अभिव्यक्ति; दूसरा, देह पर सामाजिक/पारिवारिक नियंत्रण; और तीसरा, देह से आत्म-अधिकार की ओर जानेवाली चेतन प्रक्रिया। (चौबे, 2009; इंद्रवती, 2013; पवार, 2006)

चर्चा एवं विश्लेषण : उत्तर-आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-अनुभव का एक बड़ा गुण उसकी बहुवाचिकता है। यहाँ स्त्री एक ही समय में बेटी, पत्नी, माँ, प्रेमिका, कामकाजी व्यक्तित्व, उपेक्षित प्राणी, विद्रोही देह और विचारशील आत्मा—सब हो सकती है। यह बहुवाचिकता पारंपरिक आदर्श स्त्री-रूप की विघटनशील आलोचना करती है। इसी कारण इन उपन्यासों में भाषा मर्यादा की अनुचरी नहीं रहती; वह देह की धड़कन, भीतर के क्षोभ और सामाजिक पाखंड की चीर-फाड़ बन जाती है। इस दौर की स्त्री-कथा देह को न तो केवल 'भोग' बनाती है, न केवल 'बलिदान'; वह उसे स्मृतियों, दमन, श्रम, यौनिक आकांक्षा और स्वत्व के संधिस्थल के रूप में पढ़ती है। (अग्रवाल, 2011; चौबे, 2009)

मित्रो की बोलती देह: मित्रो मरजानी का सबसे बड़ा साहित्यिक साहस यह है कि वह स्त्री की दैहिक भूख को नैतिक अपराध या हास्यास्पद विचलन के रूप में नहीं, दाम्पत्य-सत्य के रूप में सामने लाती है। उपन्यास में घरेलू वातावरण, ताने, देवरानी-जिठानी संवाद और देह-संबंधी उच्छृंखल मुहावरे उस सांस्कृतिक राजनीति को बेनकाब करते हैं जिसमें पुरुष की कामेच्छा स्वाभाविक मानी जाती है, पर स्त्री की इच्छा असभ्यता। मित्रो की वाचालता केवल उच्छृंखलता नहीं है; वह उस चुप्पी के ख़िलाफ़ भाषिक विद्रोह है, जिसने सदियों से स्त्री को 'सहनशील' बनाकर रखा। "पलंग पर बैठे-बिठाए जिसे चंगा-चोसा मिल जाए" जैसी पंक्ति और "तेरे इस सुरमेदानी दिल की क्या खबर" जैसा संबोधन यह दिखाता है कि मित्रो देह और इच्छा के प्रश्न को घर की चौखट के भीतर ही

सार्वजनिक बना देती है। यही उसकी उत्तर-आधुनिकता है—वह नैतिकता की धूल झाड़कर अनुभव की जीवित देह को सामने रखती है। (सोबती, 2022; राजकिशोर, 1994)

मनु की आत्मदर्शी देह: चित्तकोबरा में स्त्री-अनुभव बाहरी संवाद से अधिक अंतर्मन की बेचैनी और दैहिक आत्मबोध के रूप में उभरता है। मनु की देह यहाँ किसी पुरुष-दृष्टि से प्रकाशित नहीं होती; वह स्वयं अपनी देह को देखती, सोचती, कल्पित करती और उसके माध्यम से अपनी रिक्तताओं को पढ़ती है। "अगर मेरा शरीर एक उरोज होता" या "मैं सिर्फ जबान हूँ" जैसे छोटे-छोटे कथन महज़ कामोत्तेजक नहीं, बल्कि आत्म-परक और स्त्री-केंद्रित देह-दृष्टि के उद्घाटन हैं। यही कारण है कि यह उपन्यास प्रेम, विवाह और विवाहेतर संबंध को केवल सामाजिक अपराध-श्रेणियों में नहीं रखता; वह उन्हें मनुष्य की कामना, अभाव और असंतोष की गहरी दरारों से जोड़कर देखता है। "कुछ क्षण अँधेरा और पल सकता है" की भाव-भूमि में मनु का अनुभव बताता है कि देह की यात्रा अंततः आत्म-ज्ञान की यात्रा भी है। उत्तर-आधुनिक स्त्री-अनुभव की यह एक केंद्रीय विशेषता है कि वह प्रेम और देह को स्थिर नैतिक श्रेणियों से मुक्त कर अनुभवात्मक जटिलता में रखता है। (गर्ग, 2013; अग्रवाल, 2011)

माँ की छाया और अदृश्य श्रम: *माई*उस स्त्री-अनुभव को रेखांकित करता है जो खुली दैहिक अभिव्यक्ति से नहीं, बल्कि अदृश्यता से निर्मित होता है। यहाँ देह का प्रश्न घरेलू श्रम, सेवा, आत्म-लोप और मध्यवर्गीय परिवार की सांस्कृतिक संरचना के भीतर उभरता है। माई सबकी सुविधा का केंद्र है, पर स्वयं अपनी ही कथा से विस्थापित। नई पीढ़ी की दृष्टि पहले उसे "बेचारी" मानती है; फिर धीरे-धीरे समझती है कि इस मौन के भीतर एक अनकही शक्ति, एक दबा हुआ स्वत्व, एक निजी ताप है। इस उपन्यास का महत्त्व इस बात में है कि यह स्त्री-देह को केवल यौनिक अर्थों में नहीं पढ़ता; वह उसे थकान, सेवा, पारिवारिक उपलब्धता और सांस्कृतिक मिटा-देने की राजनीति के भीतर देखता है। इस प्रकार *माई*देह-चेतना की एक और परत खोलता है—वह परत जिसमें स्त्री की अनुपस्थित-सी देह पूरे परिवार की उपस्थित संरचना को सम्भाले रहती है। (श्री, 2023; इंद्रवती, 2013)

यदि मित्रो मरजानी स्त्री की बोलती हुई दैहिकता है, चित्तकोबरा अंतरंग आत्म-शरीर का मनोवैज्ञानिक पाठ है, और माई अदृश्य मातृ-देह का सांस्कृतिक दस्तावेज़, तो स्पष्ट हो जाता है कि उत्तर-आधुनिक हिन्दी उपन्यास में स्त्री-अनुभव एकरुपी नहीं है। उसका स्वर कभी चुटीला है, कभी बेचैन, कभी थका हुआ, कभी प्रश्नाकुल। यही बहुस्वरीयता उत्तर-आधुनिक स्त्री-पाठ की असली पहचान है। यहाँ स्त्री अपने बारे में बोलती ही नहीं, अपने बोलने के तरीकों को भी बदल देती है। दबी हुई इच्छा, असंतुष्टि, घरेलू असमानता और संवेदना की भूख—इन सबका संगम इन कृतियों में देह को अर्थ और प्रतिरोध दोनों का माध्यम बनाता है। (चौबे, 2009; पाण्डे, 2019)

उत्तर-आधुनिक स्त्री-लेखन का दूसरा केंद्रीय बिंदु है—देह पर नियंत्रण की राजनीति। यह राजनीति केवल शयनकक्ष तक सीमित नहीं; परिवार, जाति, श्रम-विभाजन, सामाजिक प्रतिष्ठा, मातृत्व, हिंसा और सार्वजनिक जीवन तक फैली हुई है। इसी संदर्भ में मृणाल पाण्डे का स्त्री-शक्ति और शक्तिहीनता पर विचार तथा प्रभा खेतान का स्त्री-उपनिवेश का सूत्र एक साथ पढ़े जाने चाहिए। दोनों यह संकेत करते हैं कि स्त्री पर नियंत्रण की पहली कक्षा घर है, और देह पर अधिकार का पहला प्रश्न भी वहीं जन्म लेता है। इसलिए देह-चेतना का अर्थ यहाँ देह का उत्सव नहीं, बल्कि देह पर लगाए गए अर्थों का पुनर्विचार है। (पाण्डे, 2019; खेतान, 2003)

प्रिया का घायल स्वत्व: छिन्नमस्ता में स्त्री-अनुभव और देह-चेतना का रिश्ता सबसे जटिल रूप में उभरता है। यह उपन्यास दिखाता है कि देह पर आघात केवल शारीरिक नहीं होता; वह भावात्मक, मानसिक, सामाजिक और आर्थिक स्तरों पर भी स्त्री को खंडित करता है। प्रिया की यात्रा बचपन की असुरक्षा से लेकर आत्मनिर्मित पहचान तक जाती है। "क्या तुमने भी वही दर्द झेला है" जैसी पंक्ति स्त्री-इतिहास को निजी स्मृति से जोड़ देती है; मानो एक स्त्री अपने भीतर से बोलते हुए पूरी स्त्री-जाति के दुख का पुरातत्व खोल रही हो। वहीं "मैंने दुख झेला है" के भीतर एक पीड़िता का रोदन भर नहीं, बल्कि झेलकर बची हुई चेतना की कठोरता है। छिन्नमस्ता की विशिष्टता इस बात में है कि यहाँ देह पर हुए अतिक्रमण स्त्री को समाप्त नहीं करते; वे उसे अपने लिए एक अलग जीवन-क्षेत्र बनाने को

विवश करते हैं। इसीलिए प्रिया का आर्थिक स्वावलंबन भी देह-अधिकार की विस्तारित भूमि है। (खेतान, 2016; खेतान, 2003)

गर्भ, हत्या और गाँव की स्मृति: चाक में देह-चेतना ग्रामीण स्त्री-अनुभव से जुड़ती है। यहाँ देह केवल इच्छा की जगह नहीं, सामुदायिक नैतिकता, हिंसा और नियंत्रण का मैदान है। "पतित स्त्री, गर्भिणी औरत की हत्या" का उद्घोष इस तथ्य को नंगी स्पष्टता से सामने रखता है कि स्त्री की कोख पर पुरुष-सत्ता का अधिकार कितनी निर्ममता से काम करता है। रेशम की हत्या और सारंग की संवेदना के बीच उपन्यास स्त्री-देह को सामाजिक न्याय के प्रश्न से जोड़ देता है। साथ ही स्त्रियों के "पिए हुए समस्त विष" को मुस्कान में ढाल देने की छवि बताती है कि सहना भी यहाँ निष्क्रियता नहीं; वह कभी-कभी प्रतिरोध की तैयारी है। चाक स्त्री-अनुभव को लोक, स्मृति, रिश्तों और हिंसा की सामूहिक संरचना में रखता है; इसीलिए इसकी देह-राजनीति शहराती निजता से भिन्न, पर उतनी ही तीखी है। (पुष्पा, 2018; पवार, 2006)

हिंसा से जिजीविषा तक: कठगुलाब में देह-चेतना हिंसा के खिलाफ़ पुनर्निर्माण की कथा बन जाती है। स्मिता के जीवन में जीजा का वस्तुकरण—"सैक्स अपील, बेबी"—और उसके बाद की छेड़छाड़ यह सिद्ध करते हैं कि स्त्री-देह का सबसे सुविधाजनक उपनिवेश परिवार ही हो सकता है। पर इसी उपन्यास में कठगुलाब का रूपक भी है—"पहले क्यों नहीं पिलाया पानी।" यह पंक्ति प्रतीकात्मक रूप से बहुत अर्थवान है: स्त्री को खिलने से पहले मनुष्य की तरह सींचा जाना चाहिए; वरना वह बंद कली बनी रहती है। कठगुलाब का स्त्री-विमर्श इसीलिए महत्त्वपूर्ण है कि वह उत्पीड़न का वृत्तांत लिखकर रुकता नहीं; वह आत्मसम्मान, श्रम, संगठन और प्रतिकार की दिशा में बढ़ता है। स्मिता, असीमा और अन्य स्त्री-पात्रों के माध्यम से उपन्यास यह दिखाता है कि देह घाव की स्मृति भी रखती है और पुनर्जीवन की शक्ति भी। (गर्ग, 2023; कुमार, 2024; ओझा, 2020)

इन विश्लेषणों से स्पष्ट है कि उत्तर-आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में देह-चेतना का आशय किसी एक 'बोल्डनेस' से नहीं है। कभी वह यौनिक आत्मस्वीकृति है, कभी घरेलू श्रम की अदृश्यता, कभी हिंसा का ज़ख्म, कभी मातृत्व की थकान, कभी आर्थिक स्वावलंबन, कभी भाषा की उद्दंडता, कभी सामाजिक मर्यादाओं के विरुद्ध उठी हुई संवेदना। यही बहुआयामी रूप इसे साहित्यिक और वैचारिक दोनों स्तरों पर महत्त्वपूर्ण बनाता है। इन उपन्यासों ने यह स्थापित किया कि स्त्री का मन उसकी देह से अलग नहीं और देह उसकी नियति की कैद भी नहीं; दोनों मिलकर उसका समूचा व्यक्तित्व रचते हैं। (राजकिशोर, 1994; अग्रवाल, 2011; ओझा, 2020)

परिणाम : इस अध्ययन से कुछ स्पष्ट निष्कर्ष उभरते हैं। पहला, उत्तर-आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-अनुभव निजी जीवन की छोटी-छोटी जगहों से शुरु होकर सामाजिक संरचना की आलोचना तक पहुँचता है। दूसरा, देह-चेतना का प्रतिपादन यहाँ अधिकतर पुरुष-दृष्टि से पलटकर स्त्री-दृष्टि में घटित होता है; इसलिए देह पहली बार अपनी भाषा में बोलती है। तीसरा, स्त्री-विमर्श का अर्थ केवल उत्पीड़न का वृत्तांत नहीं रह जाता; वह इच्छाओं, असंतोष, श्रम, मातृत्व, आर्थिक स्वायत्तता और वैचारिक आत्मनिर्णय को साथ लेकर चलता है। चौथा, इन उपन्यासों में पारिवारिक संस्था को पवित्र अविनाशी इकाई मानने के बजाय उसे सत्ता-संबंधों के जटिल स्थल के रूप में देखा गया है। पाँचवाँ, स्त्री की मुक्ति का प्रश्न देह की मुक्ति से अलग नहीं, बल्कि उसी के भीतर से निर्मित है। (चौबे, 2009; इंद्रवती, 2013; कुमार, 2024)

इन परिणामों का साहित्यिक महत्त्व भी कम नहीं है। हिन्दी उपन्यास में स्त्री-अनुभव की यह नई प्रस्तुति भाषा को बदलती है, कथा-रचना को बदलती है और पात्र-निर्माण की पद्धति को भी बदलती है। मित्रो जैसी निर्भीक वाचालता, मनु जैसी आत्माभिमुख देह-दृष्टि, प्रिया जैसी स्वनिर्मित पहचान, सारंग जैसी सामुदायिक पीड़ा, स्मिता जैसी प्रतिरोधी जिजीविषा और माई जैसी मौन-भंग करती उपस्थिति—ये सब मिलकर बताती हैं कि उत्तर-आधुनिक हिन्दी उपन्यास ने स्त्री को विषय नहीं, सह-लेखक बना दिया है। वह अब कथा की 'वस्तु' नहीं; वह कथा की संवेदना, संरचना और वैचारिकी—तीनों का निर्माण करती है। (अग्रवाल, 2011; पाण्डे, 2019; पवार, 2006)

निष्कर्ष : अंततः कहा जा सकता है कि उत्तर-आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-अनुभव और देह-चेतना का प्रश्न केवल स्त्री-विषयक नहीं, बल्कि मनुष्य और समाज के पुनर्पाठ का प्रश्न है। इन उपन्यासों ने उस इतिहास को पढ़ा है जो कानून की किताबों में नहीं, देहों पर लिखा गया; उस मौन को सुना है जो रसोई, शयनकक्ष, प्रसव, अकेलेपन, अपमान और स्मृति के भीतर जमा था; और उस भाषा को खोजा है जो स्त्री को संस्कार-शृंखला से नहीं, अनुभव-सत्य से पहचानती है। इस अर्थ में ये कृतियाँ हिन्दी उपन्यास परंपरा में निर्णायक पाठ हैं। (खेतान, 2003; पचौरी, 1996)

इन उपन्यासों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि वे देह को न तो निषिद्ध बनाते हैं, न निरपेक्ष रुप से महिमामंडित। वे देह को जीवन के वास्तविक संघर्षों, वासनाओं, घावों, स्मृतियों और आकांक्षाओं से जोड़ते हैं। इसीलिए यहाँ देह-चेतना अंततः आत्म-चेतना में रुपांतरित होती है। स्त्री जब अपनी देह को स्वयं पढ़ती है, तभी वह अपने अनुभव का अर्थ बदलती है; और वहीं से साहित्य भी बदलता है। उत्तर-आधुनिक हिन्दी उपन्यासों की यह उपलब्धि आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, क्योंकि स्त्री की मुक्ति का प्रश्न अब भी देह, भाषा और स्मृति के बीच ही अपनी असली जमीन तलाशता है। (गर्ग, 2013; सोबती, 2022; पुष्पा, 2018)

संदर्भ सूची :

1. सोबती, कृष्णा. मित्रो मरजानी. , 2022.
2. गर्ग, मृदुला. चित्तकोबरा. , 2013.
3. गर्ग, मृदुला. कठगुलाब. , 2023.
4. खेतान, प्रभा. छिन्नमस्ता. , 2016.
5. पुष्पा, मैत्रेयी. चाक. , 2018.
6. श्री, गीतांजलि. माई. , 2023.
7. खेतान, प्रभा. उपनिवेश में स्त्री. , 2003.
8. अग्रवाल, रोहिणी. स्त्री लेखन: स्वप्न और संकल्प. , 2011.
9. पचौरी, सुधीश. उत्तर-आधुनिक साहित्यिक विमर्श. , 1996.
10. राजकिशोर, संपा. स्त्री के लिए जगह. , 1994.
11. पाण्डे, मृणाल. स्त्री: देह की राजनीति से देश की राजनीति तक. , 2019.
12. चौबे, ऋषि भूषण. "20वीं सदी के अंतिम दशक में प्रकाशित हिंदी उपन्यासों में स्त्री विमर्श." पी-एच.डी. शोधप्रबंध, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, 2009.
13. इंद्रवती. "समकालीन महिला उपन्यास लेखन में स्त्री विमर्श से इतर सामाजिक सरोकार." पी-एच.डी. शोधप्रबंध, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, 2013.
14. पवार, संतोष हेमराज. "मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास साहित्य के नारी चरित्र." पी-एच.डी. शोधप्रबंध, स्वामी रामानन्द तीर्थ मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, 2006.
15. ओझा, श्रुति. "मृदुला गर्ग के उपन्यासों में अभिव्यक्त स्त्री संघर्ष." अपनी माटी, 28 अक्तूबर 2020.
16. कुमार, किशोर. "कठगुलाब उपन्यास के माध्यम से स्त्री मुक्ति के प्रश्न." अपनी माटी, 31 मार्च 2024.

•